दाजी

द्वारा

पूज्य लालाजी महाराज

के 151वें जन्मोत्सव के अवसर पर दिया गया सन्देश

फ़रवरी 2024

आनंदमय रहें

"ख़ुशमिज़ाज अभ्यासी बनें, प्रकाशमान। आप न केवल अपने हृदय को व्यक्त होने दें बल्कि यह भी दर्शाएं कि आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करना एक महान उपक्रम है जो आपको खुश करता है, भले ही आपका भौतिक जीवन आसान न हो। यदि आप अच्छी तरह से समझ गए हैं कि यह मार्ग कहाँ ले जाता है तो आपको अपने कटु अनुभवों से गहराई से प्रभावित हुए बिना जीना चाहिए"
—लालाजी महाराज, रविवार, 27 जून, 1999; सुबह 10 बजे

"यह मत सोचिये कि आध्यात्मिक उन्नति दुःख का पर्याय है; हम ख़ुशहाल हैं, इसे मत भूलिए।''
—लालाजी महाराज, सोमवार, 14 अगस्त, 2000; शाम 5 बजे

"मजबूत और खुश रहें, आप अच्छी तरह से जानते हैं कि 'प्रसन्नता दिव्य कृपा को आकर्षित करती है।' इसलिए मेरे प्रेम के लिए शांत और मुस्कुराते रहें।"
—बाबूजी महाराज, रविवार, 14 जून, 1998, पूर्वाह्न

पूज्य बाबूजी ने सहज मार्ग के अभ्यास के लिए हमारी मर्जी को ही एकमात्र योग्यता माना है। मेरा दिल मानता है कि मर्जी का अर्थ आनंद के साथ अभ्यास करना है। एक प्रसन्न और खुशी से भरा दिल स्वतः ही दिव्य-कृपा को खींच लेता है। इसके

विपरीत यदि हमारे दिल में आतुरता ही न हो या फिर वह कड़वाहट, क्रोध या इच्छाओं से भरा हो तो वह ऊपर से बरसने वाली दिव्य-कृपा को रोक देता है। मास्टर्स चाहते हैं कि हम अपने परिवर्तन में आनंदपूर्वक भागीदार बनें। आनंद को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नीचे कुछ सिद्धांत बताए गए हैं -

1. माता-पिता, समुदाय या स्वयं के द्वारा स्थापित मान्यताओं को दूर करें।

हमारी भावनात्मक अवस्था बाहरी स्रोतों जैसे माता-पिता, समुदाय और हमारे जीवन के अनुभवों से जन्मे हमारे मूल्यों तथा हमारी पसंद व नापसंद में रंगी होती है। उस हृदय में खुशी कैसे पनप सकती है जो केवल कुछ शर्तों के पूरा होने पर ही खुश हो सकता है?

बाबूजी कहा करते थे, "खुशहाल व्यक्ति वह है जो हर परिस्थिति में खुश रहता है।" आनंद बिना शर्त उमड़ता है। यह तब फलता-फूलता है जब हम यह मांग नहीं रखते कि कुछ शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए। इच्छाएं होने की दशा में हमारी खुशियां उनके तृप्त होने की आस पर टिकी होती हैं। यदि इच्छा अधूरी रह जाती है तो हम निराश और हताश हो जाते हैं। हमारी भावनाओं का पेंडुलम खुशियों से दुःख की ओर झूल जाता है। जब हमारी ख़ुशी सशर्त होती है और अगर वह शर्त अधूरी रह जाती है तो हमारी वह ख़ुशी कभी नहीं आती। प्रज्ञावान वे ही हैं जो इच्छाओं की निरर्थकता को समझ जाते हैं। साधक अन्ततः समझ ही जाता है कि वास्तविक आनंद किसी सांसारिक वस्तु पर निर्भर नहीं होता है।

यौगिक प्राणाहुति के द्वारा अभ्यासी शुरु से ही उच्चतर अवस्थाओं का अनुभव कर निम्न सुखों के प्रति स्वतः अलगाव और अरुचि पैदा कर लेता है। निम्न से उच्च का यह स्वाभाविक अहसास ही विवेक का सार है। यह अलगाव फिर स्वतः ही वैराग्य में बदल जाता है। परम्परागत तरीके इसीलिए असफल हो गए क्योंकि वे जिज्ञासु के भीतर उच्चतर दशाएं पैदा नहीं कर पाए। किसी उच्च का अनुभव हुए बिना वैराग्य

कोई खुशी नहीं देता क्योंकि साधक को लगता है कि उसके वैराग्य ने उसे सांसारिक सुख से वंचित भी कर दिया है और उसकी जगह कुछ सूक्ष्म प्रदान भी नहीं किया है। वह कुछ खो देने के भय (FOMO) से ग्रसित हो जाता है। संस्कृति और दूसरों से प्रभावित हो जाने वाले हृदय के भीतर यह धारणा घर कर जाती है कि सांसारिक लोगों के पास तो ज्यादा खुशियां हैं और वे अधिक आनंद ले रहे हैं। इसीलिए परंपरागत वैरागी जंगलों में रहा करते थे ताकि कहीं ऐसा न हो कि बाहरी प्रलोभन उनके संस्कारों को जगा दें और उन्हें सांसारिकता में वापस खींच लाएं।

2. अपेक्षा न रखें!

दूसरों में पूर्ण आदर्श की तलाश न करें। छुटपुट घटनाओं पर निरंतर झगड़ने वाले पति-पत्नियों की कल्पना करें। उनमें अलग होने का साहस नहीं होता और साथ में उनका जीवन आनंदहीन रहता है। दूसरों में विशेषतः अपने प्रियजनों में पूर्णता की तलाश करना और उन्हें अपनी अपेक्षा के अनुरूप न पाना जल्द ही नापसंद में बदल सकता है और परिणामस्वरूप प्रेम का प्रवाह रुक जाता है। घुटन से भरा हुआ प्रेम एक प्रकार की आत्महत्या है। दूसरा व्यक्ति बदलने का प्रयास करे या फिर झूठी मुस्कराहट, झूठे शिष्टाचार या नकली आचरण का दिखावा कर बदल जाने का ढोंग करे और फिर दिखावा ही हावी होता जाता है। इससे एक ऐसे वातावरण का निर्माण होता है जो दिखावे और ढोंग की मिसाल होता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि 'खुश रहने के लिए अपेक्षा न करें।'

3. सौदेबाजी कभी न करें।

सौदेबाजी कभी न करें। यह हमारे जीवन का बड़ा गंभीर मुद्दा है। कोई यह कह कर कि, "जो मैं कर सकता था मैंने किया" अपनी आगे की ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेता है। स्वाभाविक रूप से उनकी अपनी खुशी गायब हो जाती है। उदारतापूर्वक देने से खुशियां आती हैं जबकि कंजूसी हमारी खुशियां छीन लेती है। प्रेम के वशीभूत आप दूसरों के लिए जितना अधिक करते हैं उतना ही अधिक आपकी और देने की

इच्छा होती है। अपनी माँग पूरी न होने तक अपने प्रेम या अपनी सेवा को रोक कर रखना दुखों की सुनामी ले आता है। यह दुःख की बात है जब कोई कहता है कि, "मैंने तो उससे प्यार किया पर उसने कुछ नहीं जताया." मुझे समझना चाहिए कि मैं तो केवल दे ही सकता हूँ इसलिए बदले में मुझे किसी से कोई माँग नहीं करनी चाहिए नहीं तो देना एक सौदा बन जाएगा। सौदेबाजी से क्षणिक सुख तो मिल सकता है लेकिन सच्ची खुशी कभी नहीं। लोग तो मंदिरों में देवी-देवताओं को भी नहीं छोड़ते। वहाँ की मुख्य गतिविधि भी सौदेबाजी ही होती है, "हे ईश्वर, यदि आप मेरे लिए यह कर देंगे तो मैं आपके लिए वह कर दूंगा।" जिस ईश्वर की आप सेवा करते हैं और जिस ईश्वर से आप प्रेम करते हैं क्या उसके साथ यह निम्नस्तर की सौदेबाजी करने में आपको शर्म नहीं आती? या क्या फिर आप यह सब अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते हैं? जब आप मन ही मन यह जानते हों कि आप धोख़ेबाज़ हैं तो क्या सचमुच में आनंद उमड़ पाएगा? जो भी दूसरे के साथ धोख़ा करता है वह अन्ततः स्वयं को ही धोखा देता है।

4. सभी के प्रति कृतज्ञ रहें।

कृतज्ञता का भाव मुख्य रूप से तभी उमड़ता है जब हमें जो प्राप्त हुआ है वह हमारी अपेक्षाओं से अधिक हो। हम हमेशा कृतज्ञता के भाव में कैसे रह सकते हैं? बिल्कुल भी अपेक्षा न रखें। तब हम हर चीज को एक बोनस के रूप में आता अनुभव करते हैं और उसे कृतज्ञता सहित ग्रहण करते हैं। सन्तोष एक अच्छी चीज है लेकिन कृतज्ञता एक उच्च कोटि का गुण है क्योंकि इसमें हम हर चीज को प्रियतम से मिला एक तोहफ़ा और उसके प्रेम का एक प्रतीक समझते हैं। सभी तोहफ़ों को एक दिव्य आशीर्वाद के रूप में देखना दाता के साथ अत्यधिक जुड़ाव को पैदा करता है और आनन्दमयता का अम्बार लग जाता है।

5. अपने और अपने प्रियजनों के प्रति अपनी पूर्ण प्रतिबद्धता निभाएं।

चुराई गई किसी भी चीज का आप पूरा आनन्द नहीं उठा सकते। यदि आप आम

> सन्तोष एक अच्छी चीज है लेकिन कृतज्ञता एक उच्च कोटि का गुण है क्योंकि इसमें हम हर चीज को प्रियतम से मिला एक तोहफ़ा और उसके प्रेम का एक प्रतीक समझते हैं। सभी तोहफ़ों को एक दिव्य आशीर्वाद के रूप में देखना दाता के साथ अत्यधिक जुड़ाव को पैदा करता है और आनन्दमयता का अम्बार लग जाता है।

चुराते हैं तो उसका स्वाद उतना मीठा नहीं लगता जितना कि सही प्रकार से प्राप्त किए गए एक आम का। कुछ लोग भीतर के इस भारीपन को चोरी करने से प्राप्त हुए गर्व एवं खुशी के अहसास से ढकने का प्रयास करते हैं। लेकिन यह तो अपने अपराध-बोध पर सिर्फ़ लीपापोती करने के लिए होता है। इसी प्रकार अपने व दूसरों के प्रति अपने पावन कर्तव्यों के निर्वहन की उपेक्षा करने पर हम इन जिम्मेदारियों की पूर्ति के लिए मिले समय के जरूरी संसाधन से हाथ धो बैठते हैं। इसके बदले हम जिस गतिविधि में व्यस्त रहते हैं वह गतिविधि अपना स्वाद खो देती है और उसमें विकास की सम्भावना को चूक जाने का एक मलाल शामिल हो जाता है.

इसके विपरीत, पवित्र कर्तव्यों को पूरा करने से आनंद की असीमित अभिव्यक्ति होती है। आनंद को एक सात्विक दशा समझा जाता है। सुख की तामसिक या आकांक्षाओं की राजसिक प्रवृत्तियों के विपरीत इसका सम्बन्ध सूक्ष्म गतिविधि से होता है। दिव्य चेतना में किया गया कोई भी कार्य सात्विक हो जाता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है क्योंकि एक देहधारी आध्यात्मिक जिज्ञासु होने के नाते हमारा एक पैर दिव्यलोक में और एक पैर धरती पर होता है। हर सांसारिक गतिविधि आरम्भ से ही सात्विक नहीं हो सकती फिर भी सतत स्मरण के द्वारा हम सभी गतिविधियों को खुशी-खुशी सात्विक रूप से संचालित कर सकते हैं। आंतरिक वैराग्य की स्थिति में हमारे कर्मों में सौदेबाजी की कोई भावना नहीं रह जाती। बिना व्यक्तिगत लाभ की उम्मीद करने या छिपे हुए एजेंडे को आगे बढ़ाने के बजाय उन्हें उनके आंतरिक मूल्य के लिए निष्पादित करते हैं। जो विरक्त है उसका जीवन चंचलता और आनंद से भर जाता है।

यह निष्काम कर्म, इच्छा रहित कर्म का एक पहलू है।

6. क्षमा करना सीखें।

क्षमा करना सीखें। खुशी और कड़वाहट या प्रतिशोध साथ-साथ रह सकते हैं? हमें क्षमा करना सीखना होगा। क्षमा का अर्थ है उदारता - एक ऐसा गुण जो एक सच्चे वैरागी के उन्नत हृदय में वास करता है। भगवान श्रीकृष्ण, कर्ण और अर्जुन की उस प्रसिद्ध कहानी को याद करें। अर्जुन जो कर्ण का शत्रु था, उसने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा कि कर्ण को इतना दानवीर क्यों माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वर्ण के दो पर्वत निर्मित कर दिए और अर्जुन से एक दिन के भीतर सारा स्वर्ण दान करने को कहा। अर्जुन स्वर्ण दान करने के संघर्ष से जूझता रहा लेकिन जितना भी वह दान करता पर्वत फिर भी उतने ही बड़े दिखाई देते। दिन का अंत होने पर भी स्वर्ण के दोनों पर्वत खड़े रहे। भगवान श्रीकृष्ण ने फिर कर्ण को बुलाया और स्वर्ण के दोनों पर्वत दान करने को कहा। पहले दो व्यक्ति जो वहाँ से गुजरे, उनसे कर्ण ने कहा, "यह पर्वत तुम्हारा है और वह पर्वत तुम्हारा।" उसने वैराग्य के एक कर्म से कार्य को क्षण भर में पूर्ण कर दिया। एक सच्चा वैरागी 'मेरेपन की भावना'से पूर्णतः रहित होता है अतः उसकी उदारता असीमित हो जाती है।

क्षमा में उदारता का एक ऐसा गुण भी निहित है जिसमें हमें उस वस्तु के प्रति भी

आंतरिक वैराग्य की स्थिति में हमारे कर्मों में सौदेबाजी की कोई भावना नहीं रह जाती। बिना व्यक्तिगत लाभ की उम्मीद करने या छिपे हुए एजेंडे को आगे बढ़ाने के बजाय उन्हें उनके आंतरिक मूल्य के लिए निष्पादित करते हैं। जो विरक्त है उसका जीवन चंचलता और आनंद से भर जाता है। यह निष्काम कर्म, इच्छा रहित कर्म का एक पहलू है।

आसक्ति नहीं रहती जिसे हमसे चुरा लिया गया हो। विरक्ति और वैराग्य के रहते कड़वाहट नहीं पनप सकती। क्षमा स्वाभाविक और स्वचालित बन जाती है.

7. न तो ईर्ष्या को, न जलन को और न ही पूर्वाग्रह को कोई पनाह दें।

न तो ईर्ष्या को, न जलन को और न ही पूर्वाग्रह को कोई पनाह दें। ऐसे ज़हर को हमें अपने दिल में कोई पनाह नहीं देनी चाहिए। जब किसी व्यक्ति के पास हमारी इच्छा की वस्तु होती है तो हमें उसकी कमी खलती है और हमारे भीतर उस व्यक्ति के प्रति कड़वाहट पनप सकती है और इसका परिणाम होता है द्वेष। यह समस्या भी अहम् की एक अभिव्यक्ति 'मेरेपन की भावना' का परिणाम है.

बाबूजी ने पूर्वाग्रह को 'मार्ग की सबसे बड़ी बाधा' बताया है। यह अभिमान से उत्पन्न होता है और अहंकार का ही दूसरा रूप है। इसकी बजाय बाबूजी हमें विनम्रता विकसित करने की सलाह देते हैं और याद दिलाते हैं कि, "ईश्वर सभी के भीतर रहता है अतः किसी के साथ घृणित व्यवहार करने का कोई आधार नहीं है।"

8. कम से कम को अधिक से अधिक खोजते जाएं।

आनंद में हल्कापन होता है। यह बोझ रहित, बिना शर्त, इच्छाओं से मुक्त और अपनी वस्तुओं के प्रति उदासीन होना है। यह वही स्वतंत्रता और हल्कापन है जो शरणागति अपनी राह में लाती है। यह आनंद के अलावा और कुछ नहीं है। जीवन का संपूर्ण प्रवाह वैराग्य, या स्वतंत्रता की ओर है। केवल इच्छा रहित हृदय में बोझ का कोई संकेत नहीं होता। इसलिए हम कम से कम में से अधिक से अधिक की तलाश करते हैं।

इसका तरीका शरणागति है। एक आनंदित हृदय के खिलने के लिए शरणागति क्यों जरूरी है? क्योंकि केवल शरणागत अवस्था में ही हम अपना बोझ उतार सकते हैं

और हर उस चीज को त्याग सकते हैं जिस पर हम निर्भर रहे हों और हमारे हृदय पर जिसका भारी बोझ रहा हो।

भगवान श्रीकृष्णः "...केवल मेरी शरण में आओ. मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा..."

जीसस क्राइस्टः "मार्ग, सच्चाई और जीवन मैं ही हूँ।"

बाबूजी महाराजः "...मेरे प्रेम के लिए शांत और मुस्कुराते रहें।"

यद्यपि उपरोक्त कथन अहंकारपूर्ण प्रतीत हो सकते हैं लेकिन मास्टर्स तो स्वयं अहंकार से मुक्त होते हैं। शरणागति की प्रक्रिया में वे रूपांतरित हो जाते हैं। कृतज्ञता और शरणागति के बिना प्रार्थना असंभव है। शरणागति में कमी का अर्थ है कि जिज्ञासु और ईश्वर के मध्य अभी भी किसी रुकावट का होना। इस दीवार के होते सृष्टिकर्ता, अस्तित्व और सृष्टि के मध्य एक दूरी बन जाती है। क्या इसके होते इन दो आयामों के मध्य लयावस्था स्थापित होना संभव है? यदि लयावस्था की सामान्य प्रक्रिया ही संभव नहीं तो फिर पूर्ण विलय की आशा हम कैसे कर सकते हैं? सृष्टिकर्ता हर समय पूर्णतः उपलब्ध होता है। बात का मर्म यह है कि, "क्या मैं भी प्रेम और विनम्रता के साथ उतना ही उपलब्ध हूँ?" असल शुरुआत तो तब होती है जब हम मार्ग का अनुसरण करने हेतु मात्र एक अभ्यास की अवस्था से आगे बढ़कर एक पूर्णतः शरणागत के रूप में निखर उठते हैं।

बाबूजी ने एक बार चारी जी को लिखा था, "मैं अभ्यासियों के हृदय में चमक देखना चाहता हूँ।" सहज मार्ग का अभ्यासी होने के नाते मैं स्वयं से पूछता हूँ कि, "अपने भीतर मैं इसे कैसे ला सकता हूँ? अपने भीतर मैं यह चमक कैसे पैदा कर सकता हूँ? मेरी चेतना के आकाश में चमकते सितारों पर ये बादल अभी भी क्यों छाए हुए हैं?" अलग-अलग घनत्व वाले बादल बना करते हैं। कुछ अहम् के कारण, कुछ अज्ञानता के कारण और कुछ सभी प्रकार की गहरी इच्छाओं के फूटते रहने के

> आनंद में हल्कापन होता है। यह बोझ रहित, बिना शर्त, इच्छाओं से मुक्त और अपनी वस्तुओं के प्रति उदासीन होना है। यह वही स्वतंत्रता और हल्कापन है जो शरणागति अपनी राह में लाती है। यह आनंद के अलावा और कुछ नहीं है। जीवन का संपूर्ण प्रवाह वैराग्य, या स्वतंत्रता की ओर है। केवल इच्छा रहित हृदय में बोझ का कोई संकेत नहीं होता। इसलिए हम कम से कम में से अधिक से अधिक की तलाश करते हैं।

कारण। हम जीवन भर चेतना के आकाश के इसी रंगीन नज़ारे के साथ खेलने में व्यस्त रहते हैं. यह दुखद है कि यह हमें किसी न किसी चीज पर निर्भर बनाए रखता है। जब हम अहम् से मुक्त हो जाते हैं और समर्पण कर देते हैं तो ये बादल छँटने लगते हैं और हम सचमुच स्वतंत्र हो जाते हैं।

हम समर्पण कैसे करें? बाबूजी का उत्तर है, "निर्भरता पैदा करो।"

जब हम केवल उसी पर निर्भर हो जाते हैं तो अन्य चीज़ें हम पर अपनी पकड़ खो देती हैं। हमारे रंगे हुए अस्तित्व का रंग गायब हो जाता है और हम स्वतंत्र हो जाते हैं। जब हम वास्तविक अर्थों में समर्पण कर देते हैं तो संसार पर हमारी निर्भरता गायब हो जाती है और केवल तभी हृदय की चमक प्रकट होना आरम्भ कर देती है। ऐसे हृदय से ही आनंद की सुगंध निकलती है।

9. प्रकृति के अनुरुप रहें

प्रकृति के साथ तालमेल बिठाना "अधिक और अधिक का कम और कम" का परिणाम है। बाबूजी लिखते हैं, "प्रकृति ही सरलता का सार है।" अपनी शाम की सफ़ाई के दौरान, हम अशुद्धियाँ और जटिलताएँ दूर करते हैं। अशुद्धियों को दूर करने से शुद्धता बचती है और जटिलताओं को दूर करने से सरलता बचती है।

10. करुणा केवल अपने लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के लिए भी हो।

जिस प्रकार न्याय में भेद-भाव नहीं किया जाता उसी प्रकार करुणा में भी भेद-भाव नहीं होना चाहिए। यह सभी के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह, प्राथमिकता या भेद-भाव के होनी चाहिए। इसकी एक अभिव्यक्ति स्वयं के प्रति करुणा भी है। लेकिन बहुत से लोग केवल इतना ही कर पाते हैं और स्वयं के प्रति करुणा-भाव से ही संतुष्ट रहते हुए दूसरों के प्रति असंवेदनशील बने रहते हैं। सच्चे अर्थ में यह कोई करुणा-भाव नहीं बल्कि स्वार्थ-भाव है। हमारे चारों ओर के लोग जब कष्ट में हों तो क्या हम खुश रह सकते हैं? एक मानव हृदय दूसरों के दुःख से अछूता नहीं रह सकता। संसार की आध्यात्मिक परम्पराएं हमसे करुणा तथा भलाई के अन्य परोपकारी मनोभाव उत्पन्न करने को कहती हैं। उदाहरण के लिए योगसूत्र के भाग-1; सूत्र-33 में पतंजलि मित्रता, करुणा एवं खुशी को उत्पन्न करने तथा गलत कार्य करने वालों की उपेक्षा करने को कहते हैं।

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणाम् सुख-दुःख।
पुण्यापुण्य विषयाणाम् भावना तश्चित्त प्रसादनम्।।
(योगसूत्र I-33)

बौद्ध धर्म में इन्हीं चार गुणों को ब्रह्म-विहार कहा जाता है. भक्ति और जैन परम्पराओं में भी इन्हीं चार गुणों का एक साथ वर्णन है। इन्हें सार्वभौमिक गुण माना जा सकता है।

11. खुशी, कृतज्ञता, और विनम्रता को अपना स्वाभाविक आन्तरिक वातावरण बना लें। सोच-समझ कर ऐसा ही वातावरण चुनें जो आपके हृदय को विकसित कर सके।

ऋषि अष्टावक्र द्वारा कथित निम्नलिखित गुण एक विकासशील आन्तरिक वातावरण की कसौटी हैं-

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्यज्।
क्षमार्ज्जवदयातोषं सत्यं पीयूषवद् भज।।

"हे पुत्र! यदि तू मुक्ति की खोज में है तो इन्द्रिय-विषयों की विष के समान उपेक्षा कर तथा क्षमा, आर्जव, करुणा, सन्तोष एवं सत्य का अमृत के समान सेवन कर।"
—(अष्टावक्र गीता I-2)

आनंद के विभिन्न स्तर हैं, प्रत्येक एक विशेष स्तर पर हमारा पोषण करता है। आनंदम या परमानंद, इसकी शुद्ध, मिलावट रहित अवस्था है। जबकि आनंद का विपरीत संताप है और सुख का विपरीत दुख है, परमानंद का कोई विपरीत नहीं है। जब परमानंद भौतिक स्तर पर प्रतिबिंबित होता है तो उसे सुख के रूप में अनुभव किया जाता है जो स्थूल शरीर का पोषण करता है। जब यह सूक्ष्म प्रणाली में प्रतिबिंबित होता है तो यह आनंद के रूप में अनुभव किया जाता है जो सभी सूक्ष्म शरीरों को पोषण देता है। अपने प्रामाणिक रूप में परमानंद, कारण शरीर, आनंदमय कोष का पोषण करता है। आनंदमय कोष में आनंद की अभिव्यक्ति आत्मा से निकटता के कारण होती है जो शुद्ध आधार-शक्ति है।

आनन्द की अभिव्यक्ति जितनी स्थूल होती है उतना ही कम तृप्तिदायक उसका अनुभव होता है। उदाहरण के लिए अतीत के सुखों की याद प्रायः मनुष्य को हताश कर देती है और उस अनुभव को दोहराने की इच्छा को भड़काती है। इसके विपरीत, अतीत के आनंद की स्मृति वर्तमान में उसी आनंद को पुनः उत्पन्न कर देती है। अपनी आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ करने से पहले हम शारीरिक स्तर पर सुख का अनुभव किया करते हैं। उसके बाद फिर हम खुशी के अनुभव और अन्ततः आनंद के अनुभव की ओर आगे बढ़ते हैं. लेकिन आत्मा की ओर बढ़ते हुए हमें आनन्द के अनुभव के भी पार जाना होगा क्योंकि आत्मा आनन्द के भी पार होती है।

हमारी हालत में यह परिवर्तन लाना मालिक का कार्य होता है। आनन्द को त्यागना संभव नहीं क्योंकि त्याग की वह दशा एक और आनन्द को जन्म दे देती है। अतः वह कार्य हमें मास्टर्स पर छोड़ देना चाहिए। हमें तो ऊपर दिए गए तरीकों के माध्यम से अपने भीतर आनन्द के उमड़ने पर ध्यान देना चाहिए। आनंद की पूर्णता, आनंदम की स्थिति तक पहुंचने से ही हमें उससे भी आगे निकलने और आधार-शक्ति के क्षेत्र एवं शून्य में जाने का अवसर मिल सकता है।

सप्रेम एवं सादर,
कमलेश

दाजी

द्वारा

पूज्य लालाजी महाराज

के 151वें जन्मोत्सव के अवसर पर दिया गया सन्देश

फ़रवरी 2024, कान्हा शांतिवनम्

heartfulness
advancing in love

02022024

MRP: ₹50/-